भक्ति व उपासना का आधार उपनिषदीय ज्ञान

*प्रहलाद सहाय वर्मा

प्रस्तावना

'''उपनिषद्' शब्द का अर्थ है– उप समीपं निषीदति प्राप्नोति–इति उपनिषद् अर्थात् जिसके द्वारा परम समीपभूत ब्रह्म का साक्षात्कार हो वह उपनिषद् है।''1

अमरकोष के अनुसार ''जिसके अर्थ– धर्म, एकान्त व वेदान्त हैं। वह उपनिषद् है।''2

मनुष्य जीवन का उद्देश्य है अखंड आनंद से परिपूर्ण श्रीभगवान् को प्राप्त करना। जीवन के समस्त कार्य भी इसी लक्ष्य को मध्य में रखकर किए जाने चाहिए। हमारी संस्कृति को इस लक्ष्य का ज्ञान भगवान् वेद से प्राप्त होता है वेद मूल हैं। वेद के दो भाग संहिता व ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण के दो भाग आरण्यक व उपनिषद् हैं। उपनिषदों की संख्या बहुत है परंतु मुख्य रूप से ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तरीय और श्वेताश्वतर ये नौ उपनिषदें हैं। इन उपनिषदों का लक्ष्य परमेश्वर के स्वरूप का अनुसंधान व प्राप्ति है।

उपनिषदें ज्ञान की खान हैं। उपनिषदों में बहुत प्रकार के योगों का वर्णन है परंतु कर्मयोग, ज्ञानयोग व भक्तियोग में उनका पूरा भाव आ जाता है। ये तीनों योग भिन्न–भिन्न श्रेणियों के प्राणियों के लिए साधन के सोपान हैं।

कर्मयोग

उपनिषदों में कर्मयोग की चर्चा सर्वत्र है, ईशावास्योपनिषद् का पहला मंत्र ही कर्मयोग का स्पष्ट उदाहरण है।

''ईशावास्य मिद सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम्।।''3

अर्थात् अखिल ब्रह्मांड में जो कुछ भी जड़ चेतन स्वरूप जगत है यह समस्त ईश्वर से व्याप्त है, उस ईश्वर को साथ रखते हुए त्याग पूर्वक भोगते रहो। इसमें आसक्त मत होओ। क्योंकि धन भोग्य पदार्थ किसका है अर्थात् किसी का नहीं।

तात्पर्य ईश्वर का निरंतर चिंतन करते हुए, जगत के कर्मों को त्याग पूर्वक भोगना चाहिए। इनमें आसक्त नहीं होना चाहिए। क्योंकि यह सब नश्वर है। ऐसे अनासक्त योग को ही कर्म योग कहते हैं।

ईशावास्योपनिषद् के दूसरे मंत्र में कर्मयोग को और स्पष्ट किया है–

'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समाः।

एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।'''4

अर्थात् शास्त्र नियत कर्मों को करते हुए इस जगत में सौ वर्षों तक जीने की इच्छा करनी चाहिए। इस प्रकार किए जाने वाले कर्म तुझ मनुष्य में लिप्त नहीं होंगे इससे अन्य कोई प्रकार या मार्ग नहीं है।

उपनिषदों का चरम लक्ष्य मोक्ष की अनुभूति होना समाधि के द्वारा सम्भव है और समाधि अभ्यास व वैराग्य के द्वारा सम्भव होती है। विक्षिप्त चित्त प्रतिपल इधर–उधर भटकता है और इस अवस्था में तत्व का अनुभव नहीं हो सकता। चित्त के स्थिर करने से अभ्यास व वैराग्य में दृढ़ता आती है। अतः चित्त के स्थिर करने के लिए निष्काम कर्मयोग का आश्रय लेना चाहिए। कठोपनिषद् निष्काम कर्मयोग को इस प्रकार व्यक्त करता है।

"यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः।

अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते।।" 5

अर्थात् इस साधकके हृदयमें स्थित जो कामनाएँ हैं वे सब–की–सब जब समूल नष्ट हो जाती हैं तब मरणधर्मा मनुष्य अमर हो जाता है और वह यहीं ब्रह्म का भलीभाँति अनुभव कर लेता है।

तात्पर्य मनुष्यके हृदय में कामनाओं–वासनाओं के संचित संस्कारों के कारण स्थिरता नहीं होती और न परमतत्व को प्राप्त करने की कोई इच्छा होती है परन्तु जब वह अपने कर्मों को आसक्ति का त्याग कर, कामनारहित होकर सम्पन्न करता है तो उसके हृदय में, चित्त में स्थिरता व परमात्मप्राप्ति की जिज्ञासा उत्पन्न होती है।

ज्ञान योग

इसी प्रकार ज्ञान योग से पूरित मंत्र उपनिषदों में यत्र तत्र हैं। तत्व चिंतकों का मानना तो यह है कि उपनिषदें आत्मा के स्वरूप को बताने वाले मुख्य ग्रंथों के रूप में ही हैं।

ईशावास्योपनिषद् के सातवें मन्त्र में ज्ञानयोग का वर्णन इस प्रकार है।

"यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।

तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।।"6

अर्थात् जिस स्थिति में परब्रह्म परमेश्वर को भलीभाँति जानने वाले महापुरुष के अनुभव में संपूर्ण प्राणी एकमात्र परमात्म स्वरुप ही हो जाते हैं। उस अवस्था में उस एकता का (परमेश्वर का) निरंतर साक्षात् करने वाले पुरुष के लिए कौन सा मोह रह जाता है कौन सा शोक?

तात्पर्य जिसने अपनी आत्मा के व्यापकत्त्व को पहचान लिया कि जो आत्मा है वही परमात्मा है तो उसके लिए कहीं कोई शत्रु मित्र नहीं और जब शत्रु–मित्र नहीं तो राग–द्वेष नहीं।

तैत्तरीय उपनिषद् की ब्रह्मानंद बल्ली में ज्ञानयोग के लक्ष्य ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार है–

"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्।

सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति।।"7

अर्थात् ब्रह्म सत्य ज्ञान स्वरूप और अनंत है, जो मनुष्य परम विशुद्ध आकाश में (रहते हुए भी) प्राणियों के हृदय रूप गुहा में छिपे हुए (उस ब्रह्म) को जानता है वह विज्ञान स्वरूप ब्रह्म के साथ समस्त भोगों का अनुभव करता है।

तात्पर्य जो ब्रह्म के साथ एकीकार हो गया जिसने ज्ञान के द्वारा यह जान लिया कि मेरे स्वरूप और ब्रह्म के स्वरूप में एकता है। वह करता हुआ भी कर्ता नहीं भोगते हुए भी भोक्ता नहीं रहता। यह इस ऋचा में निहित ज्ञानयोग है

श्वेताश्वतर उपनिषद् ने ज्ञानयोग को इस प्रकार व्यक्त किया है–

"निश्कलं निष्क्रिय शान्तं निरवद्यं निरंजनम्।

अमृतस्य पर सेतुं दग्धेन्धनमिवानलम्।।"8

अर्थात् कलाओं से रहित, क्रिया रहित, सर्वदा शांत, निर्दोष, निर्मल अमृत के परम सेतुरूप जले हुए ईधन से युक्त अग्नि की भाँति निर्मल ज्योति स्वरूप उन परमात्मा का मैं चिंतन करता हूँ।

तात्पर्य निर्गुण–निराकार परमात्मा की साधना करने वाले को संसार से असंबद्ध, अक्रिय एवं अमृत के केंद्र, मोक्ष दाता का आश्रय लेना चाहिए या उसे तत्वतः जान लेना चाहिए। जिससे वह अज्ञान से निवृत्त होकर ज्ञानस्वरूप परमतत्व के साथ एक हो जाता है और निरंतर उन्हीं के चिंतन में संलग्न हो जाता है।

श्वेताश्वतर उपनिषद् के तीसरे अध्याय में ज्ञानयोग की व्याख्या कुछ इस प्रकार है–

"अणोरणीयान महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः।

तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम्।।"9

अर्थात् वह सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म बड़े से भी बहुत बड़ा परमात्मा इस जीव की हृदय रूप गुहा में छिपा हुआ है सबकी रचना करने वाले परमेश्वर की कृपा से जो उस संकल्प रहित परमेश्वर को और उसकी महिमा को देख लेता है या जान लेता है वह सब प्रकार से दुखों से रहित हो जाता है।

कठोपनिषद् में यमराज नचिकेता से इसी विषय में कहते हैं –

"यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति।

एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम।।" 10

अर्थात् जिस प्रकार निर्मल जल में मेघों द्वारा सब ओर से बरसाया हुआ निर्मल जल वैसा ही हो जाता है, उसी प्रकार हे गौतमवंशीय नचिकेता! एकमात्र परब्रह्म पुरुषोत्तम ही सब कुछ है इस प्रकार जानने वाले मुनि का आत्मा परमेश्वर को प्राप्त हो जाता है अर्थात् परमेश्वर में मिल जाता है।

मुंडकोपनिषद् में ज्ञानयोग का स्वरूप –

"सम्प्राप्यैनमृ शयो ज्ञानतृप्ताः, कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः।

ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीरा, युक्तात्मान सर्वमेवाविशन्ति।।" 11

अर्थात् सर्वथा आसक्तिरहित और विशुद्ध अंतः करण वाले लोग इस परमात्मा को पूर्णतया प्राप्त होकर ज्ञानसे तृप्त एवं परम शांत हो जाते हैं, अपने आपको परमात्मा में संयुक्त कर देने वाले वे ज्ञानीजन सर्वव्यापी परमात्मा को सब ओर से प्राप्त करके सर्वरूप परमात्मा में ही प्रविष्ट हो जाते हैं।

भक्तियोग

उपनिषदों में भक्तियोग का स्वरूप विस्तार से प्राप्त होता है उसमें श्रीगोपालपूर्वतापनीयोपनिशद्, श्रीगोपालउत्तरतापनीयोपनिशद्, नृसिंहपूर्व व नृसिंहउत्तर तापनीयोउपनिशद्, श्रीरामपूर्व व श्रीरामउत्तरतापनीयोपनिशद् आदि हैं।

इसके अतिरिक्त जिन उपनिषदों में कर्मयोग ज्ञानयोग की चर्चा है उनमें भी भक्तियोग की ऋचाएँ प्राप्त होती हैं।

भक्तियोग परक ऋचाएँ –

मुंडकोपनिषद् में भक्तियोग की प्रसिद्ध ऋचाओं के पूरे के पूरे प्रकरण प्राप्त होते हैं–

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।
समाने वृक्षे पुरूशो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः।।
यदा पश्यः पश्यते रूक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरूशं ब्रह्मयोनिम्।
तदा विद्वान्पुण्यपापे विधूय निरंजनः परमं साम्यमुपैति।।"12

अर्थात् एक साथ रहने वाले तथा परस्पर सखा भाव रखने वाले दो पक्षी (जीवात्मा और परमात्मा) एक ही वृक्ष का आश्रय लेकर रहते हैं, उन दोनों में से एक तो उस वृक्षके कर्मरूप फलों का स्वाद ले लेकर उपभोग करता है, किन्तु दूसरा खाता नहीं केवल देखता रहता है, इस शरीर रूपी समान वृक्ष पर रहने वाला जीवात्मा शरीर की गहरी आसक्ति में डूबा रहता है और असमर्थतारूप दीनता का अनुभव करता हुआ मोहित होकर शोक करता है किंतु जब कभी भगवान् की अहैतुकी दया से भक्तों द्वारा नित्यसेवित तथा अपने से भिन्न परमेश्वर को और उनकी महिमा को यह अप्रत्यक्ष कर लेता है, तब सर्वथा शोक रहित हो जाता है तथा जब यह द्रष्टा (जीवात्मा) सबके शासक ब्रह्मा के भी आदि कारण, संपूर्ण जगत के रचयिता दिव्यप्रकाशस्वरूप परम पुरुष को प्रत्यक्ष कर लेता है, उस समय पुण्य–पाप दोनों से रहित होकर निर्मल हुआ वह भक्त सर्वोत्तम समता को प्राप्त कर लेता है।

तात्पर्य परमेश्वर की दया ही इस विषय में परम कारण हैं अगर परमात्मा एक बार अपनी दया दृष्टि जीव पर कर दे, तो वह समस्त दुःखों से छूट कर उसके निकट पहुँच जाता है।

श्वेताश्वतर उपनिषद् में भक्तियोग से पूरित परमात्मा की स्तुति का वर्णन–

"सहस्रशीर्शा पुरूशः सहस्राक्षः सहस्रपात।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम्।।
पुरूश एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति।।"13

अर्थात् वह परम पुरुष हजारों सिर वाला हजारों आँख वाला हजारों पैर वाला है वह समस्त जगत को सब ओर से घेरकर नाभि से दस अंगुल ऊपर अर्थात् हृदय में स्थित है जो अब से पहले हो चुका है, जो भविष्य में होने वाला है और जो खाद्य पदार्थों से इस समय बढ़ रहा है, यह समस्त जगत परम पुरुष परमात्मा ही है और वही अमृतस्वरूप मोक्ष का स्वामी है।

तात्पर्य सर्वत्र और सब कुछ परमात्मा है ऐसा जानकर उसी का भजन करना चाहिए। क्योंकि वही दुःखों से छुड़ाकर आनंद प्रदान कर सकता है अतः उसी की शरण लेनी चाहिए।

शरणागति के लिए श्वेताश्वतर उपनिषद् का मंत्र –

"सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।

सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत्।।"14

अर्थात् जो परम पुरुष परमात्मा समस्त इंद्रियों से रहित होने पर भी समस्त इंद्रियों के विषयों को जानने वाला है सबका स्वामी सबका शासक सबसे बड़ा आश्रय है उसकी शरण में जाना चाहिए।

तात्पर्य ऐसे दिव्य गुण परमात्मा की शरण होना ही भक्तियोग का मुख्य प्रयोजन है।

ईशावास्योपनिषद् में उस दिव्य गुण परमेश्वर के दिव्य दर्शन की प्रार्थना है–

"हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।

तत्वं पूशन्न पावृणु सत्यधर्माय दृश्टये।।"15

अर्थात् हे सबका भरण–पोषण करने वाले परमेश्वर सत्य स्वरूप आप सर्वेश्वर का श्रीमुख ज्योतिर्मय सूर्यमंडल पात्र से ढका हुआ है, आपकी भक्तिरूप सत्यधर्म का अनुष्ठान करने वाले मुझको अपने दर्शन कराने के लिए उस आवरण को आप हटा लीजिए।

तात्पर्य उस परमात्मा का दर्शन साधन साध्य नहीं, उसकी कृपा पर ही निर्भर है वे जब कृपा करेगें तभी उनका दर्शन होगा।

उसका स्वरूप कैसा है? इसका गोपालपूर्वतापनीयोपनिषद् में आकर्षक वर्णन–

"सत्पुण्डरीकनयनं मेघाभं वैद्युताम्बरम्।

द्विभुजं ज्ञानमुद्राढयं वनमालिनमीश्वरम्।।

गोपगोपांगनावीतं सुरद्रुमतलाश्रितम्।

दिव्यालंकारणोपेतं रत्नपंकजमध्यगम्।।

कालिन्दीजलकल्लोलसंगिमारूतसेवितम्।

चिन्तयंश्चेतसा कृश्णं मुक्तो भवति संसृते।। 16

अर्थात् भगवान् के नेत्र विकसित श्वेतकमल के समान परम सुंदर हैं, उनके श्री अंगों की कांति मेघ के समान श्याम है वे विद्युत के सदृश तेजोमय पीतांबर धारण किए हुए हैं, उनकी दो भुजाएँ हैं व ज्ञानमुद्रा में स्थित हैं, उनके गलेमें

पैरों तक लंबी वनमाला शोभा पा रही है, वे ईश्वर हैं, ब्रह्मा आदि देवताओं पर भी शासन करने वाले हैं, गोपों तथा गोप सुंदरियों द्वारा वे चारों ओर से घिरे हुए हैं, कल्पवृक्ष के नीचे वे स्थित हैं, उनका श्रीविग्रह दिव्य आभूषणों से विभूषित है रत्नसिंहासन पर रत्नमय कमल के मध्यभाग में विराजमान हैं। कालिंदी सलिलसे उठती हुई चंचल लहरों को चूमकर बहने वाली शीतल मंद सुगंध वायु भगवान् की सेवा कर रही है। इस रूप में भगवान् श्रीकृष्ण का मन से चिंतन करने वाला भक्त संसार बंधन से मुक्त हो जाता है। भगवान् के ऐसे दिव्य स्वरुप, दिव्यलोक का वर्णन न केवल एक गोपालपूर्वतापनीयोपनिषद् में है

वरन् इस भक्ति योग के चरम लक्ष्य नंदनंदन व इनके अन्य सगुण स्वरूपों के वर्णन से उपनिषदें भरी हुई हैं।

इस प्रकार उपनिषदें कर्मयोग, ज्ञानयोग व भक्तियोग के वर्णन से ओतप्रोत हैं। आवश्यकता है तो विवेकपूर्ण दृष्टि से इन विषयों का अनुसंधान करने की और सुधीजनों तक सम्प्रेषित करने की। क्योंकि पूर्वोक्त तीनों योग हम सभी के जीवन के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण व उत्तम पाथेय हैं।

***सह आचार्य संस्कृत**
बाबा नारायण दास राजकीय कला महाविद्यालय,
चिमनपुरा, (शाहपुरा)

संदर्भ

1. उपनिषद् अंक–ग्रीताप्रेस गोरखपुर, सम्वत् 2055, चतुर्थ संस्करण, पृ0–103
2. अमरकोष 3/3/93 पृ0–456
3. ईशावास्योपनिषद् 1
4. ईशावास्योपनिषद् 2
5. कठोपनिषद् 2/3/14
6. ईशावास्योपनिषद् 7
7. तैत्तरीयोपनिषद् 2/1/1
8. श्वेताश्वतरोपनिषद् 6/19
9. श्वेताश्वतरोपनिषद् 3/20
10. कठोपनिषद् 2/1/15
11. मुण्डकोपनिषद् 3/2/5
12. मुण्डकोपनिषद् 3/1/1–3
13. श्वेताश्वतरोपनिषद् 3/14–15
14. श्वेताश्वतरोपनिषद् 3/17
15. ईशावास्योपनिषद् 15
16. गोपालपूर्वतापनीयोपनिषद् 1/10–12